Part I Hons,
P. II
G. B

PAPER (II) व्यापार एवं वाणिज्य ①

Q. Trade and Commerce in 6th Century B.C.

बुद्धकालीन उद्योग धंधों के विषय में बौद्ध जातकों पिटकों और अन्य ग्रंथों में प्रचुर सामग्री सुरक्षित हैं। उनको देखने से विदित होता है कि आज ही की भाँति तब भी आबादी का अधिकांश गाँवों में रहता था। थोड़ी सी जगह में ग्राम के सारे गृह सटे-सटे खड़े होते थे और बाहर उनके चारों ओर व्यक्ति खेत होते थे। छोटे बड़े अपनी-अपनी मिलकियत के अनुसार वे सार्वजनिक सीमाओं अथवा सिंचाई की नहरों से पृथक पृथक बँटे होते थे। ग्राम के समीप के वनों पर गाँव वालों का सामूहिक स्वत्व होता था। इसी प्रकार वालों अथवा चारागाहों पर भी मवेशियों को चराने का उनका समान अधिकार होता था। इन चारागाहों में मवेशी गोपालक की देख रेख में चरते थे। गोपालक वैतनिक और ग्राम निवासियों का सार्वजनिक नौकर होता था।

भूमि के बड़े-बड़े स्वामी न थे जमींदारी की प्रथा अभी अनजानी थी। छोटे-छोटे कृषक अपनी भूमि के जोतने बोने आदि के स्वामी थे जो अपनी लगान अथवा भूमिकर बगैर किसी बिचवैये के सीधा राजा को देता था। परन्तु भूमिका स्वामी अपनी भूमि ग्राम सभा की अनुमति बिना बेच अथवा रेहन नहीं कर सकता था। साधारणतया व्यवहार में इस प्रकार की अनुमति मिलने में कोई दिक्कत नहीं होती थी। कृषक अपनी भूमि बैलों की सहायता से आप जोतते थे या इस कार्य को मजूरों कमकरों या दासों से कराते थे। बड़े-बड़े भू-स्वामी तक नहीं थे। कृषक अपना उपज के छठे भाग से बारहवें भाग तक गाँव के मुखिया द्वारा राजा को प्रदान करते थे। मुखिया गाँव का मुख्य व्यक्ति था जो वहाँ के शासन की देख-रेख करता था। वह कभी तो मौरूसी पुश्तैनी पदाधिकारी होता था। कभी ग्राम सभा द्वारा चुना जाता था वह अपने शासन कार्य में ग्राम सभा से सब प्रकार की सहायता पाता था। शांति रखने

और रक्षा कार्य में वह सदा जागरूक रहता था। ग्राम प्राचीन काल के ग्रामों की भाँति अब भी अधिकतर स्वतंत्र थे। अपनी आवश्यकताओं को वे प्रायः पूर्ति कर लेते थे। सिंचाई की नहरों से सम्पत्ति और आराम के लिए सराएँ बनाने के वे सार्वजनिक कार्यों के न तो वे बड़े धनाढ्य और न बड़े दरिद्र ही थे। अपराध कम होते थे, इससे मुकदमे बाजी की संख्या भी बहुत कम थी। अपने झगड़े ग्रामवासी अपने या पंचायत में निपटा लेते थे। परन्तु उस प्रसन्न आबादी को अनवर्षा अथवा बाढ़ का अकाल कभी कभी दुःखी के देता था।

नगरों की संख्या काफी हुए होते हुए भी बहुत बड़ी न थी उनकी संख्या जैसी आज है अधिकतर मध्य हिन्दू और तुगलक काल में बढ़ी है। बौद्ध साहित्य में बहुत ही कम नगरों या निगमों का उल्लेख मिलता है। जिन नगरों का वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है वे थे मुख्यतः मगध की राजधानी राजगृह वत्स की कौशाम्बी कौशल की सावत्थी (श्रावस्ती) वाली वज्जियों की वैशाली अंग की चम्पा शाक्यों की कपिलवस्तु अवन्ती की उज्जैनी, ज्पमिनी, वाराणसी, अयोध्या मथुरा। ~~तक्षशि~~ तक्षशिला आदि। मगध की दूसरी नयी राजधानी पाटलिपुत्र का अभी निर्माण नहीं हुआ था अभी वह केवल पाटलिग्राम था।

नगर साधारणतः दुर्गाकार एक दीवार से घिरे होते थे। उनके मकान मिट्टी अथवा ईंटों के बने थे, जिनमें लकड़ी का प्रचुर प्रयोग होता था। गरीब और साधारण साधारण जन मामूली मकानों में रहते थे और धनाढ्य नागरिक सुन्दर ऊँचे भीतर से चित्रित तथा बाहर से रंगे भवनों में रहते थे। नगरों का जीवन अधिक ~~अधिक~~ सामूहिक और मनोरंजक ~~था~~ होता था। ये लोग समृद्धि सुख और विलास का जीवन भी व्यतीत करते थे।

Scanned with CamScanner

ग्रामों से नगरों का जीवन भिन्न था। नागरिकों के उद्योग – धन्धे आदि भी स्वभावत: गाँववालों से भिन्न थे। शिल्प कलाएं भी अनेक आचार्यों को धन और यश प्रदान करती थी। साधारणतया लोगों का पेशा कृषि था। परन्तु उसके अतिरिक्त अन्य धंधे भी लोग करते थे। लकड़ी और धातुओं में कई प्रकार के काम होते थे। सुनारों की वृत्ति भी काफी उन्नत उन्नति पर थी। सोना चाँदी और रत्नों पर कटाव के अनेक काम होते थे। गाड़ी रथ और नौकापोत बनाने वाले चतुर शिल्पी कभी अवकाश नहीं पाते थे। इसी प्रकार वास्तु विधारक विशारद भी जिसका काम बड़े-बड़े भवन और प्रासाद बनाना था। राजगृह का परकोटा और उसके भीतर की जरासन्ध की बैठक इन्हीं वस्तु शिल्पियों ने बनायी होगी। इनके अतिरिक्त कुम्हार, चर्मकार, माली, जुलाहे और गजदात कर्मकर भी थे, जो अपने – अपने पेशों में दक्ष थे। इनके अतिरिक्त कुछ हीन शिल्प भी थे जिनका पेशा करनेवाले सामाजिक दृष्टि से कुछ ऊँचे नहीं समझे जाते इनमें मुख्यत: चकनानेवाले, सपेरे, बहेलिए, धीवर, नर्तक अभिनेता आदि। साधारण तथा लोग कुलागत धन्धे करते थे परन्तु कुल वृत्ति कोई बन्धन न थी और शिल्प की सदा वर्णानुसार नहीं होते थे। इसकारण हमें तत्कालीन बौद्ध साहित्य में जुलाहे धनुवृत्तिवाले श्रमिक कृषक, ब्राह्मण वणिक अथवा बढ़ई तथा गोपालन के कार्यकरनेवाले भी मिलते हैं। जातकों के अन्य शिल्पियों के नाम हैं।, बढ़ई, सुनार, लोहार पत्थर काटने वाले तन्तुवाय (जुलाहे) रंगकार, कुम्हार, नट्टायक आदि।

उस समय शिल्पियों में एक प्रकार का संगठन था एक वृतिवाले अधिकतर अपना एकदल संगठित कर लेते थे जिसे श्रेणी कहते थे। एक श्रेणी वाले नगर के एक भाग में अथवा एकमार्ग के दोनों ओर रहते थे

वह भाग बहुधा उन्हीं के नाम से पुकारा जाता था। इस प्रकार की अनेक श्रेणियों लगभग १८ के नाम जातकों में सुरक्षित हैं। श्रेणी का एक मुखिया अथवा जेठक होता था, उसका उत्तरदायित्व बड़ा था। उसकी प्रतिष्ठा भी बड़ी थी। नगरों में उनका पद ऊँचे राजपुरुषों से किसी प्रकार कम न था, कभी-कभी अपना संगठन दृढ़तर करने के लिए अनेक वर्ग अथवा श्रेणी के मिलकर एक हो जाते थे। इनके अपने नियम विधान थे।

जातकों में छठी सदी ई० पू० के आसपास के वाणिज्य के अनेक उल्लेख मिलते हैं। उनके अध्ययन से पता चलता है कि उस समय भारत का वाणिज्य सम्बन्ध संसार के अनेक बाहरी देशों से था। दोनों प्रकार के अर्थात देश के भीतर विविध प्रदेशों में पारस्परिक और विदेशों से व्यापार प्रचुर मात्रा में चलते थे। स्थल और जल के दोनों व्यापार मार्ग इस अर्थ व्यवहृत होते थे। व्यापार करने वाले वणिक देश और विदेश में विविध प्रकार की वाणिज्य सामग्री लिए बेचते फिरते थे। क्रय विक्रय की चीजों में सभी प्रकार की चीजें होती थी जैसे रेशम, मलमल, खुदकारी के काम कम्बल, सुगन्धित द्रव्य औषधियाँ बर्तन मुक्ता मणि रत्नादि कवच, हाथी दांत और हाथी दांत के बने कामवगैरह। व्यापारी देश के भीतर नदियों और वाणिज्य पथों से होकर आते-जाते थे और विदेशों को सामुद्रिक रास्ते से। पूर्वी और पश्चिमी समुद्रतट पर अनेक पत्तन बन्दरगाह थे। व्यापारी पूर्वी समुद्र में चीन बरमा सिंहल आदि देशों को ताम्रलिप्ति से और बावर आदि को पश्चिमी तट के कच्छ आदि बन्दरगाहों से जाते थे।

देश के वणिक पथ प्रशस्त और लम्बे थे जिनसे दूरस्थ नगर एक दूसरे से जुड़े हुए थे। इस प्रकार के कई राज्य मार्गों का उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है। इनमें

(5)

से एक श्रावस्ती से प्रतिष्ठान तक जाता है या दूसरा श्रावस्ती से मगध में राजगृह तक जाता था। तीसरा श्रावस्ती से चलकर सुदूर सीमाप्रान्त के तक्षशिला तक पहुँचता था और चौथा काशी के पश्चिमी समुद्र तट के पत्तनों और नगरों से जोड़ता था। इन प्रशस्त वणिक पथों पर बीच-बीच में अनेक पड़ाव होते थे और नदियों के घाटों पर खेने वाली नाव चलती थी सारे देश में छोटे-छोटे मार्गों के जाल से बिछे थे।

बड़े वणिकपथों पर सार्थवाह चलते थे। जो सार्थवाह राजपूताना के प्रशस्त मरुस्थल को पार करते थे वे रात्रि में अपना मार्ग नक्षत्रों की गति से पहचानते थे ये लंबे वणिकपथ सर्वथा सुरक्षित न थे। इनमें से बहुतेरे मार्गों में डाकू भी छिपे रहते थे जो सुविधा पाकर सार्थवाहों को लूट लेते थे फिर भी सार्थवाह व्यापार में चूकते न थे। काशी से चलने वाले सार्थवाहों के दल में ~~इधर उधर~~ हजार, हजार बैलगाड़ियों के एक साथ चलने का उल्लेख जातकों में मिलता है। ये सार्थवाह अपनी रक्षा के लिए अपने साथ सशस्त्र रक्षक रखते थे। ये देश के भीतर फिरते वणिकों अनेक पथ चुंगी और अन्य कर लगते थे। इससे स्वभावतः वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाया करता होगा।

क्रय विक्रय करते समय मूल्य का आदान प्रदान अब विनिमय से नहीं होता था। विनिमय का तरीका बहुत पहले बन्द हो चुका था इस समय सिक्के चलते थे। एक प्रकार के सिक्कों को कहापण या कार्षापण कहते थे। कार्षापण ताँबे के होते थे जिनपर कई प्रकार के चिन्ह अंकित होते थे। ये अंक वणिक अथवा उनकी श्रेणियाँ उनका भार आदि निर्धारित करने के लिए उनपर अंकित करती थी। निष्क और सुवर्ण सोने के सिक्के थे जो इस काल चलते थे। मासक और काकीणका नामके दो और प्रकार के सिक्के भी चलते थे। इनकी शक्ल

चौकोर होती थी

उन दिनों ऋण उधार भी चलते थे जिनपर आप ही की भाँति ब्याज लिया जाता था। ब्याज पर धन चलाना कानूनन जायज था। यद्यपि अधिक ब्याज लेकर गरीबों को पीसना बुरा समझा जाता था बैंकों का चलन नहीं था। इससे धन से सुवर्ण अथवा आभूषण खरीदकर लोग रखते थे। रुपये पैसे के घड़े माटी में रखकर जमीन में गाड़ कर भी रखे जाते थे। कभी-कभी उसे मित्र के यहाँ भी रख देते थे जिसका विवरण पत्र पर लिखकर रख लिया जाता था। गड़े धन का भी बीजक बनाकर रखते थे।

Scanned with CamScanner